अध्याय

3

पाश्चात्य नीतिशास्त्र

3.01 सुकरात – ज्ञान एवं सद्‌गुण

नीतिशास्त्र का उद्देश्य कुछ ऐसे मूल सिद्धान्तों की स्थापना करना है जिनके आधार पर मनुष्य स्वयम के प्रति एवं दूसरे के प्रति कर्तव्यों का निर्धारण कर सके तथा अपने एवं दूसरों के कर्मों के संबंध में उचित–अनुचित का निर्णय कर सके। पश्चिमी देशों में विकसित आचारशास्त्र के उक्त सिद्धान्तों को पाश्चात्य नीतिशास्त्र की संज्ञा दी गई है।

पाश्चात्य नैतिक दर्शन के इतिहास का प्रारम्भ यूनानी नैतिक दर्शन से स्वीकारा जाता है और यूनानी नैतिक दर्शन पाश्चात्य नैतिक दर्शन की आधारभूमि प्रस्तुत करते हैं। यूनान में मनुष्य के चरित्र एवं व्यावहारिक जीवन से संबंधित समस्याओं के बारे में स्वतन्त्र चिन्तन ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी में आरम्भ हुआ इससे पूर्व यूनान में दार्शनिकों का मुख्य उद्देश्य बाह्य जगत की व्याख्या करना ही था। मानव जीवन की समस्याओं पर व्यावहारिक दृष्टि से विचार का आरम्भ 'सोफिस्टस' दार्शनिकों द्वारा किया गया जो यूनान में उस समय पेशेवर शिक्षकों के समूह के रूप में जाने जाते थे। इनमें प्रोटेगोरस, हिप्पियास, एण्टिफोन, गार्जियास आदि प्रमुख सोफिस्ट चिन्तक थे।

सोफिस्टस ने अपने युग की सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियों के अनुसार नैतिकता की व्याख्या करने का प्रयास किया। उस समय यूनान छोटे–छोटे स्वतन्त्र 'नगर–राज्यों' में विभक्त था जिनकी अलग–अलग सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व्यवस्था और धार्मिक विश्वास थे। सोफिस्टस विचारकों के अनुसार किसी विचार अथवा सिद्धान्त के सत्य अथवा उचित होने की एकमात्र कसौटी उसकी व्यावहारिक उपयोगिता ही थी। वे ज्ञान, सद्‌गुण और नैतिकता को मनुष्य के व्यावहारिक जीवन की सफलता के साधन रूप में देखते थे। इसी दृष्टि से उन्होंने तत्कालीन यूनान में जिन नैतिक सिद्धान्तों को जन्म दिया वे इस प्रकार से थे :–

1. शुभ–अशुभ, उचित–अनुचित, सत्य–असत्य, सभी व्यक्तिसापेक्ष हैं–अर्थात् ये सभी व्यक्ति की इच्छाओं तथा भावनाओं पर निर्भर करते हैं। इस सम्बन्ध में प्रोटैगोरस (सोफिस्ट दार्शनिक) का कथन था–"मनुष्य ही सभी वस्तुओं का मापदण्ड है।"
2. सत्य पूर्णतः व्यक्तिनिष्ठ है। मनुष्य के मन से स्वतन्त्र शुभ, सत्य व न्याय की सत्ता स्वीकार नहीं की जा सकती।

3.1.1 सुकरात

यूनान के महान् दार्शनिक सुकरात जिन्हें प्लेटो के गुरू के रूप में जाना जाता है का जन्म 470 ई. पू. एथेन्स (तत्कालीन यूनान का एक नगर–राज्य) के एक निर्धन परिवार में हुआ था। वह सत्य के खोजी थे; विध्यानुरागी थे। उन्होंने जीवन भर जिन सद्‌गुणों की शिक्षा दी उसे अपने आचरण में अभिव्यक्त भी किया। समाज में उनका सम्मान था। वह सादा जीवन व्यतीत करते थे, तथा बौद्धिक दृष्टि से उच्चकोटि के विद्वान तथा वाक्‌पटु थे। वह नवयुवकों का प्रशिक्षण वार्तालाप के माध्यम से करते थे जिससे भ्रमवश उन्हें सोफिस्टस समझने का प्रयास कर लिया जाता है परन्तु सुकरात का उद्देश्य सफल जीवन जीने की शिक्षा देना नहीं अपितु लोगों में 'ज्ञान' के प्रति निष्ठा उत्पन्न करना और उन्हें सद्‌गुणी बनाना था। जीवन में सफलता को समझने के दो मार्ग हैं (1) भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति अर्थात सांसारिक सुख की प्राप्ति। (2) क्षणिक व अस्थायी वस्तुओं से परे स्थायी शाश्वत पूर्ण शुभ की प्राप्ति।

सोफिस्ट ने प्रथम मार्ग का चुनाव किया जबकि सुकरात ने द्वितीय पथ का चुनाव किया और प्लेटो

ने उसका पूर्ण अनुसरण किया। सुकरात सत्यभाषी, निर्भिक एवं आत्म–अनुशासिक थे जिनके दर्शन का उद्देश्य सार्वभौमिक सत्य की खोज करना था वह ज्ञान के प्रसार हेतु ही शिक्षा देते थे, परन्तु दुर्भाग्यवश तत्कालीन यूनान में उन पर नास्तिकता, देशद्रोह एवं नवयुवकों को पथ–भ्रष्ट करने का आरोप लगाया गया तथा अभियोग चलाकर उन्हे मृत्युदण्ड दिया गया। देश के कानून के प्रति एक नागरिक धर्म का निर्वाह करते हुए उन्होंने इस दण्ड को स्वीकार किया तथा इस प्रकार एक सच्चे दार्शनिक के जीवन का अन्त हुआ।

3.1.2 सुकरात की प्रमुख दार्शनिक समस्या

सुकरात के समय में ज्ञान, नैतिकता एवं राजनीति के क्षेत्र में बौद्धिक अराजकता फैली हुई थी। सोफिस्टस दार्शनिकों के ज्ञान, नैतिकता के सम्बन्ध में व्यक्तिवादी विचार लोकप्रिय थे। सुकरात के समक्ष चुनौती, ज्ञान व आचरण की इस समस्या का समाधान ढूंढना था। उनका मानना था कि इस बौद्धिक अराजकता का कारण सत्य और ज्ञान के स्वरूप को ठीक प्रकार से नहीं समझना है।

सुकरात की मानवीय बुद्धि में गहरी आस्था थी उन्होंने स्वीकारा कि मनुष्यों के अनुभव एवं विचारों में अनेकता और विविधता पायी जाती हैं, परन्तु इसमें एकता तथा सर्वमान्य निर्णय या धारणाओं को प्राप्त करने के लिए उन्होने जिस पद्धति को स्वीकार किया, वह वार्तालाप तथा प्रश्नोत्तर पर आधारित थी जिसे दर्शन शास्त्र में सुकराती पद्धति (Socratic Method) कहा जाता है।

3.1.3 सुकरात का ज्ञान एवं सद्‌गुण सम्बन्धी सिद्धान्त

सुकरात विधानुरागी थे परन्तु ज्ञान के प्रति उनका यह प्रेम मात्र सैद्धान्तिक नहीं था इसका व्यावहारिक पक्ष भी था। वह ज्ञान व आचरण की समस्या को एक ही मानते थे और उनका उद्देश्य लोगों को सद्‌गुणी बनाना था। सुकरात की नीतिमीमांसा का आधार उनकी ज्ञानमीमांसा है। उन्होने मनुष्य के लिए ज्ञान–प्राप्ति को सर्वाधिक महत्त्व दिया। वह मानते थे कि हमें जीवन व जगत के सम्बन्ध में पूरा ज्ञान नहीं है। इस सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने से पहले हमें अपने अज्ञान का बोध होना चाहिए और अपने अज्ञान को जानते हुए निष्पक्षता से किसी विषय के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित विचारों को प्रस्तुत करते हुए सामान्य और सर्वमान्य परिभाषाओं अथवा अवधारणाओं को प्राप्त करना चाहिए। उन्होंने अवधारणात्मक अथवा सम्प्रत्ययात्मक ज्ञान को ही वास्तविक ज्ञान स्वीकारा। उनके अनुसार ज्ञान सिर्फ तथ्यों की जानकारी तक ही सीमित नहीं है अपितु शुभ–अशुभ, उचित–अनुचित, सत्य–असत्य, न्याय–अन्याय आदि के भेद को ठीक–ठीक समझना भी है। सुकरात, न्याय क्या है ?शुभ क्या है ?सौन्दर्य क्या है ? इत्यादि प्रश्न पूछते थे। इस प्रश्नोत्तर पद्धति के माध्यम से उन्होंने इन सम्प्रत्ययों का ज्ञान प्राप्त किया जो मनुष्य की बुद्धि से प्राप्त होते हैं। उनके अनुसार बुद्धि ही मानव जीवन का संचालन करती है इसलिए यदि किसी को शुभ का बोध है तो वह अवश्य ही शुभ कार्य करेगा। उन्होंने ज्ञान को सद्‌गुण की आवश्यक एवं पर्याप्त शर्त स्वीकारा। प्रमुख कथन है 'सद्‌गुण ज्ञान है।'

सद्‌गुण ज्ञान है। सद्‌गुण सदैव शुभ कर्म करने की आदत के रूप में जाना जाता है जो चरित्र की उत्कृष्टता है। शुभ कर्म वह है जो मनुष्य के लिए उचित तथा वांछनीय होता है इसे कर्तव्य भी कहा जाता है। सद्‌गुण अभ्यासपूर्वक कर्तव्यपालन है। सुकरात के अनुसार सद्‌गुण ज्ञान की पूर्वापेक्षा रखता है। यदि कोई न्याय, शुभ, आत्मसंयम इत्यादि सद्‌गुणों के सच्चे स्वरूप व सार गुण को जानता है जो उसका आचरण अवश्य ही शुभ होगा। उन्होंने अधर्म या दुर्गुण का कारण अज्ञान को माना। उनका मानना था कि जानबूझकर कोई भी बुराई अथवा अधर्म नहीं करता।

सुकरात के उक्त सिद्धान्त की अरस्तु द्वारा की गयी समीक्षा के अनुसार सद्‌गुणी होने के लिए सद्‌गुणों का ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, उसके अनुसार आचरण करना भी आवश्यक है। यह संभव है कि कोई व्यक्ति सद्‌गुणों का ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् भी व्यावहारिक जीवन में सदैव उसके अनुसार आचरण न करें।

सद्‌गुण शिक्षणीय है।– सुकरात का मानना था कि सद्‌गुण सिखाया जा सकता है, क्योंकि सद्‌गुण और ज्ञान में तादात्म्य है। चूंकि ज्ञान अर्जित किया जाता है अतः सद्‌गुण भी शिक्षा द्वारा सिखाया जा सकता है।

सद्गुण एक है– सुकरात का मानना था कि सभी सद्गुण ज्ञानस्वरूप हैं, अतः वे इन्हें पृथक न मानकर परस्पर पूरक मानते थे और उनका एकत्व स्वीकार करते थे। विवेक, साहस, संयम और न्याय सभी सद्गुण ज्ञान के ही रूप हैं अतः इनमें कोई विरोध नहीं है। उनका यह सिद्धान्त सद्गुणों की एकता का सिद्धान्त कहलाता है।

सद्गुण व आनन्द– सुकरात ने सद्गुण व आनन्द को भी पृथक स्वीकार नहीं किया। उनका मानना था कि जहाँ सद्गुण हैं वहाँ आनन्द होगा। सुकरात ने सुख व आनन्द में भेद नहीं किया, परन्तु उनके परवर्ती दार्शनिक प्लेटो व अरस्तु ने बुद्धि के नियन्त्रण में, भावनात्मक पक्ष के सन्तुष्टि युक्त जीवन को आनन्दमय जीवन स्वीकारा।

3.02 प्लेटो एवं अरस्तु – मुख्य सद्गुण व मध्य मार्ग

3.2.1 प्लेटो (427–347 ई.पू.)

प्लेटो का जन्म ई.पू. 427 में एक सामंत परिवार में हुआ था। ई.पू. 407 में वह सुकरात का शिष्य बन गया और सुकरात की मृत्यु (ई.पू. 399) तक उनका अनुगामी बना रहा। सुकरात प्लेटो के जीवन का आदर्श पुरूष थे। सुकरात की दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु से उन्हें इतनी ठेस पहुँची कि यूनानी प्रजातन्त्र के प्रति उनको घृणा सी हो गई। प्रथम राजनीतिज्ञ के रूप में उनको जीवन व्यतीत करने की इच्छा थी, परन्तु अपने धर्मगुरू सुकरात के उद्देश्यों को पूर्णता देने के लिए उन्होंने राजनीति का परित्याग कर नवयुवकों के सुधार का काम अपने हाथों में ले लिया। अपने जीवन के अन्तिम काल में उन्होंने अपनी प्रसिद्ध संस्था जिम्नॉशियम (Gymnosium) अथवा एकेडमी (Academy) की स्थापना की और अपना शेष समय दर्शन के अध्ययन–अध्यापन में व्यतीत किया।

प्लेटो को ग्रीक दर्शन में आदर्शवादी एवं पूर्णतावादी विचारक के रूप में जाना जाता है। उन्होंने अपने पूर्वकाल के सभी विचारों को ध्यान में रखकर एक व्यवस्थित दर्शन तन्त्र प्रस्तुत किया जिसमें पूर्वकाल के विचारों का समन्वय तो है, परन्तु साथ ही एक मौलिक व श्रेष्ठ दर्शन भी है जो आज तक दर्शन के प्रेमियों की अक्षय निधि है। उसके दर्शन पर सर्वाधिक प्रभाव सुकरात का हैं उन्होंने सुकरात के सम्प्रत्ययों के सिद्धान्त (Doctrine of Concepts) को विज्ञानवाद (Theory of Ideas) के रूप में प्रस्तुत किया जिसके आधार पर वास्तविक ज्ञान के स्वरूप को तथा सुकरात के कथन 'सद्गुण ज्ञान है' को समझा जा सकता है।

3.2.2 मुख्य सद्गुण (Cardinal Virtues)

प्लेटो ने नैतिक आचरण के आधार रूप में 4 मूल सद्गुणों को स्वीकार किया जिन्हें मुख्य सद्गुण के रूप में जाना जाता है जो इस प्रकार से हैं–विवेक, साहस, संयम और न्याय।सद्गुणों के सम्बन्ध में व्याख्या करते हुए प्लेटो इन्हें राज्य और व्यक्ति दोनों के लिए आवश्यक मानते थे।

राज्य के सम्बन्ध में सद्गुण सिद्धान्त– प्लेटो ने राज्य के नागरिकों को तीन वर्गों में विभाजित किया प्रथम वर्ग में वे नागरिक आते हैं जो राज्य के प्रशासन का संचालन करते हैं और राज्य के सम्बन्ध में नीति निर्धारण करते हैं। प्लेटो ने इस वर्ग का विशेष सद्गुण 'विवेक' स्वीकार किया है। द्वितीय वर्ग में वे नागरिक आते हैं जिनका उत्तरदायित्व राज्य की आन्तरिक अव्यवस्था और बाह्य आक्रमण से रक्षा करना है। इन नागरिकों में प्रमुख रूप से – 'साहस' सद्गुण होना आवश्यक है। राज्य का तीसरा वर्ग व्यवसायी व उत्पादक वर्ग है। इन नागरिकों के परिश्रम पर ही राज्य की उन्नति व समृद्धि निर्भर है अतः इनमें 'संयम' सद्गुण नितान्त आवश्यक है। 'न्याय' सद्गुण को प्लेटो ने व्यापक सद्गुण के रूप में स्वीकार किया है जिसमें उपर्युक्त तीनों सद्गुणें का समावेश होता है जब राज्य के तीनों वर्गों के नागरिक सुव्यवस्था, सुरक्षा व समृद्धि के लिए सामन्जस्यपूर्ण ढंग से अपना–अपना कार्य करते हैं तो वह राज्य 'न्याय' सद्गुण से युक्त होता है।

व्यक्ति के सम्बन्ध में सद्गुण सिद्धान्त– राज्य की भांति व्यक्ति के कल्याण तथा आनन्दमय जीवन के लिए प्लेटो ने मुख्य सद्गुणों की वांछनीयता बताई है। व्यक्ति के स्वभाव के भी तीन पक्ष हैं–बुद्धि, संवेग, इच्छा। बुद्धि अर्थात् ज्ञानात्मक पक्ष का सद्गुण 'विवेक' है जो विभिन्न परिस्थितियों में व्यक्ति का समुचित मार्गदर्शन करता है और इच्छा व संवेग को नियन्त्रित करता है। संवेग अर्थात् भावनात्मक पक्ष का

सद्गुण 'साहस' है जो मनुष्य को सभी प्रकार के भय पर विजय प्राप्त करना सिखाता है। इच्छा का सम्बन्ध वासनात्मक पक्ष से है जिसका सद्गुण 'संयम' है जो वासनाओं पर उचित नियन्त्रण स्थापित करता है। जब व्यक्ति के तीनों पक्ष अपने–अपने सद्गुण के अनुसार समुचित कार्य करते हैं तो न्याय सद्गुण का उदय होता है। न्याय एक व्यापक सामाजिक सद्गुण है जिसमें अन्य सद्गुणों का भी समावेश हो जाता है।

जे.एन.सिन्हा ने अपनी पुस्तक 'ए मेन्युअल ऑफ एथिक्स' में मुख्य सद्गुणों को विस्तृत कार्यों के सन्दर्भ में स्पष्ट किया है। विवेक सद्गुण के अन्तर्गत– चिन्तन, दूरदर्शिता, पूर्वदृष्टि एवं चुनाव की स्थिरता का समावेश होता है।

'साहस' सद्गुण के अन्तर्गत–वीरता व धैर्य दोनों शामिल हैं। वीरता सक्रिय साहस है जो दुःख की आशंका होने पर भी अपने मार्ग का ही अनुसरण करता है। 'धैर्य' निष्क्रिय साहस है जो अनिवार्य कष्ट को बिना हिचकिचाहट के सहन करता है।

'संयम' सद्गुण के अन्तर्गत–मनुष्य इन्द्रियों पर बुद्धि का नियन्त्रण रखता है एवं सभी प्रकार के प्रलोभनों का प्रतिरोध करता है। आत्म–त्याग व आत्म–संयम इसके अन्तर्गत आते हैं।

'न्याय' सद्गुण में प्रेम, शिष्टाचार, सच्चाई, प्रसन्नता व परोपकार सम्मिलित हैं।

सभी सद्गुण व्यावहारिक बुद्धिमता के विभिन्न रूप हैं तथा विवेक सद्गुण सबका आधार है। व्यक्ति व राज्य के सन्दर्भ में न्याय सर्वोच्च सद्गुण है। संतुलित व सामंजस्यपूर्ण जीवन का आदर्श इसी सद्गुण के चरितार्थ होने से प्राप्त किया जा सकता है।

3.2.3 अरस्तु

अरस्तु का जन्म ई.पू. 384 में यूनान के स्टेगिरा नगर में हुआ है। उनके पिता निकामैकस मेसीडोन–नरेश फिलिप के राजवैद्य थे। 17 वर्ष की आयु में उन्होंने प्लेटो की एकेडमी में प्रवेश लिया और बीस वर्ष तक प्लेटो के सानिध्य में रहे। मेसीडोन नरेश के पुत्र एलेक्जेण्डर (सिकन्दर) के वह 3 वर्ष शिक्षक रहे। उन्होंने एथेन्स में 'लाइसियम' नामक संस्था स्थापित की। ग्रीक दर्शन में प्लेटो के बाद अरस्तु को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वह प्लेटो के शिष्य थे परन्तु उन्होंने स्वतंत्र रूप से सत्य का अनुसंधान किया और प्लेटो के मूल सिद्धान्त से सहमति रखते हुए अनेक विचारों को अस्वीकृत भी किया।

नीतिशास्त्र के क्षेत्र में उनका 'निकोमेकियन एथिक्स' पाश्चात्य नैतिक दर्शन का सर्वप्रथम व्यवस्थित ग्रन्थ माना जाता है। संतुलन, साम्य, सामंजस्य इत्यादि यूनानी आदर्शों में उनकी पूर्ण आस्था थी। नीति–विज्ञान में उन्होंने मध्यम मार्ग का अनुसरण किया।

3.2.4 सद्गुण मध्य मार्ग है (Virtue is the Golden Mean)

अरस्तु प्लेटो की भांति स्वीकार करते हैं कि बुद्धिसंगत व चिन्तनशील जीवन ही वास्तविक आनन्द की प्राप्ति कराता है जो मनुष्य के लिए अन्तिम शुभ है तथा इस प्रकार के जीवन व आनन्द की प्राप्ति सद्गुणों के अनुसार आचरण करने से होती है।

अरस्तु के अनुसार "सद्गुण मनुष्य की ऐसी स्थाई मानसिक अवस्था है जो निरन्तर अभ्यास के फलस्वरूप उसके ऐसे ऐच्छिक कर्म में अभिव्यक्त होती है, जिसे बुद्धि निर्धारित करती है।" इस प्रकार सद्गुण नैसर्गिक या जन्मजात प्रवत्ति न होकर अर्जित प्रवृत्ति है। जो अभ्यासपूर्वक कर्तव्यपालन का फल है तथा शुभ कार्य करने की आदत के रूप में इसे स्वीकारा जाता है।

अरस्तु के अनुसार सद्गुण का सम्बन्ध ऐच्छिक कर्म से है। ऐच्छिक कर्म वे होते हैं जिन्हें करने या नहीं करने के लिए मनुष्य स्वतन्त्र होता है। इस प्रकार से ऐच्छिक कर्म इच्छा या भावना से निर्धारित न होकर बुद्धि से निर्धारित होते हैं। अरस्तु के अनुसार मनुष्य में बौद्धिक व अबौद्धिक (भावनात्मक) पक्ष होते हैं तथा सद्गुण मनुष्य के इस भावनात्मक पक्ष को बुद्धि से नियन्त्रित करता है। मनुष्य की प्रवृत्ति, संवेग तथा वासनाओं पर उचित नियन्त्रण ही सद्गुण का उद्देश्य है।

अरस्तु के अनुसार सद्गुण "आपेक्षिक मध्यावस्था (Relative Mean) को ग्रहण करने का अभ्यास है, जिसके रूप को बुद्धि और व्यावहारिक ज्ञान निश्चित करते हैं।"

सद्गुण चुनाव की आदत है जो निरन्तर तटस्थता अथवा निष्पक्षता के अभ्यास से प्राप्त होती है

इसका लक्षण संयम है अर्थात् वासनाओं, प्रवृत्ति व संवेगों पर बुद्धि का नियन्त्रण है। यह प्रत्येक व्यक्ति की परिस्थिति व योग्यताओं के सापेक्ष मध्यम मार्ग का अनुसरण करता है। इसका निर्धारण करने में संभव है कि मनुष्य में व्यावहारिक बुद्धिमता के उचित प्रयोग का अभ्यास नहीं, हो अतः यह दूरदर्शी मनुष्यों की बुद्धि द्वारा निर्धारित किया जाता है।

अरस्तु ने सद्गुणों को बौद्धिक एवं नैतिक दो रूपों में बाँटा है परन्तु नैतिक सद्गुण का संदर्भ तटस्थ भाव से परम तत्त्व के ज्ञान से है। नैतिक जीवन में भाव, संवेग, वासनाएं इत्यादि होते हैं जिन पर विवेक का उचित नियंत्रण वांछनीय है। इस प्रकार के अभ्यास से ही नैतिक सद्गुणों का विकास होता है। यहाँ अरस्तु के मध्यम मार्ग को संतुलित आचार के मार्ग के रूप में उसे समझा जा सकता है। मनुष्य में बौद्धिक व अबौद्धिक दो पक्ष हैं जिनमें संतुलित बौद्धिक पक्ष का मार्गदर्शन भी आवश्यक है। अरस्तु न तो वासनाओं के उन्मूलन को कहता है ना ही वासनाओं की सन्तुष्टि मात्र को नैतिक स्वीकारता है। भवनात्मक पक्ष पर बुद्धि के नियन्त्रण के अभ्यास से हम अत्यधिक एवं अत्यल्प के दोषों से बचते हैं क्योंकि इन दोनों दोषों मे अनुभूति व क्रिया का उचित परिमाण नहीं है। साहस न तो कायरता है और ना ही दुस्साहस है। दानशीलता न तो फिजूलखर्ची है और ना ही कृपणता है। अरस्तु इस मध्यम मार्ग से भिन्न है। यह हर व्यक्ति या हर परिस्थिति में एक सा नहीं स्वीकारा जा सकता है जैसे सैनिक के लिए साहस दुस्साहस की ओर अधिक झुकाव रखता है। यह व्यक्ति की योग्यता, स्वभाव और परिस्थितियों की आपेक्षिक मध्यावस्था का चुनाव है। विभिन्न व्यक्तियों की मध्य दशा भिन्न–भिन्न होती है। यह बुद्धि द्वारा परिस्थितियों के अनुसार निश्चित किया जाता है।

निकोमेकियन एथिक्स की विशेषता यह है कि इसके निष्कर्ष किसी अतिन्द्रिय ज्ञान के ऊपर आधारित न होकर मानव जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव और विश्लेषण पर ही आधारित है। मानव आत्मा के बौद्धिक और अबौद्धिक दोनों भागों में सामंजस्य द्वारा सन्तुलित जीवन की बात की गई है। मनुष्य की सभी क्रियाओं का उद्देश्य परम शुभ या आनन्द की प्राप्ति है जिसे अरस्तु ने यूडेमोनिया कहा है। यह विचारमय जीवन व्यतीत करने से प्राप्त होता है।

3.2.5 इमैन्युअल काण्ट (1724–1804)

पाश्चात्य नैतिक दर्शन में काण्ट आधुनिक युग के महत्वपूर्ण दार्शनिक माने जाते हैं। उनका जन्म जर्मनी के एक नगर कोनिग्जबर्ग में हुआ था। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन इसी नगर के आसपास व्यतीत किया। काण्ट एक प्रतिभासम्पन्न दार्शनिक थे साथ ही उन्हें पदार्थ विज्ञान, खगोल विज्ञान व भूगोल का भी पर्याप्त ज्ञान था। उन्होंने वर्षों तक कोनिग्जबर्ग विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। काण्ट का जीवन बहुत सरल एवं अनुशासित था। वह वक्त का बड़ा पाबन्द थे। उन्हें प्रत्येक कार्य समय पर करने की आदत थी। वे जीवन में भावनाओं और इच्छाओं की अपेक्षा बुद्धि को महत्वपूर्ण मानते थे और उनकी इस जीवन पद्धति का उनके नैतिक दर्शन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।

हमने पूर्व में प्लेटो व अरस्तु के नैतिक सिद्धान्तों का अध्ययन किया। ये दोंनो दार्शनिक मानव जीवन में बुद्धि के महत्व को स्वीकार करते थे परन्तु मनुष्य स्वभाव के भावनात्मक पक्ष जिसमें संवेग व इच्छाएँ आदि हैं, के संयमित भोग को ही उचित मानते थे। काण्ट भी यूनानी दार्शनिकों की तरह मानव स्वभाव में बौद्धिक व भावनात्मक पक्ष का द्वैत स्वीकारते थे परन्तु नैतिकता का सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धि से ही मानते थे। मनुष्य की भावना, संवेग व इच्छा को काण्ट नैतिकता के क्षेत्र में स्वीकार नहीं करते थे इसलिए उसका सिद्धान्त कठोर बुद्धिवाद कहलाता है।

3.03 काण्ट – कर्तव्य के लिए कर्तव्य

काण्ट का नैतिक सिद्धान्त 'निरपेक्ष आदेश' का सिद्धान्त कहलाता है क्योंकि इस सिद्धान्त में कर्म को उचित तभी कहा जाता है जब वह शुद्ध कर्तव्यपालन के विचार से किया गया होता है। किसी कर्म का मूल्यांकन उससे प्राप्त परिणाम की दृष्टि से स्वतन्त्र होता है। इस प्रकार काण्ट ने नैतिकता का परिणाम निरपेक्षवादी सिद्धान्त प्रस्तुत किया।

काण्ट के द्वारा इस प्रकार का सिद्धान्त प्रस्तुत करने के मूल में यह विचार था कि मनुष्य की इच्छाएँ, भावनाएँ एवं प्रवृत्तियाँ परिवर्तनशील होती हैं। इनका आधार इन्द्रिय अनुभव होता है। इन्द्रिय

अनुभव पर आधारित नियम सीमित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एवं तात्कालिक मांग के अनुरूप होते हैं। नैतिक क्षेत्र में इस प्रकार के नियमों से शुभ कार्यों हेतु सार्वभौमिक मार्गदर्शन प्राप्त नहीं हो सकता।

नैतिकता के क्षेत्र में ऐसे नियम ही होने चाहिए जो सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत हों। इस सार्वभौमिकता के लिए उनका मनुष्य की बुद्धि पर आधारित होना ही आवश्यक है क्योंकि मानवीय बुद्धि ही इस प्रकार के नैतिक नियम दे सकती है जिन्हें नैतिकता के सर्वोच्च नियम के रूप में स्वीकारा जा सकता है।

नैतिकता के सर्वोच्च नियम को स्थापित करने की दिशा में काण्ट का पहला प्रश्न था–कौन सी ऐसी वस्तु है जो अपने आप में शुभ है। हमने पहले अध्याय में जाना कि मूल्य दो प्रकार के होते हैं साधन मूल्य और साध्य मूल्य। ठीक उसी प्रकार कुछ वस्तुएँ देश, काल, परिणाम, परिस्थिति की अपेक्षा से शुभ होती है परन्तु अपने आप में शुभ स्वतःसिद्ध साध्य होता है अर्थात् उसे किसी अपेक्षा से, किसी परिणाम की आशा से मूल्यवान नहीं कहा जाता। अप्रतिबन्धित (unconditional) शुभ बिना किसी शर्त के होता है। काण्ट का निष्कर्ष था कि 'शुभ संकल्प' (Goodwill) ही एकमात्र ऐसा शुभ है जो अपने आप में शुभ है जिसे स्वतः साध्य कहा जा सकता है। इसका शुभ होना देश, काल, परिस्थिति, परिणाम पर निर्भर नहीं करता यह सर्वदा व सर्वत्र शुभ होता है। काण्ट ने यद्यपि शुभ संकल्प की निश्चित परिभाषा प्रस्तुत नहीं की परन्तु काण्ट के विचार के आधार पर इसे निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है–

"शुभ संकल्प विशुद्ध कर्तव्य चेतना पर आधरित संकल्प है जिसका उद्‌गम भावना न होकर बुद्धि है और यह अभ्यास के द्वारा किया गया उचित संकल्प है।" संकल्प दृढ़ निश्चय को कहते हैं और मनुष्य स्वभाव में संवेग, भावनाएँ एवं इच्छाएँ बौद्धिक संकल्प की पूर्ति में बाधा का कार्य करते हैं इसलिए कर्तव्य पालन की बाध्यता को आवश्यक माना गया है। यह कर्तव्य पालन की बाध्यता स्वयं के ऊपर नैतिक नियम या कर्तव्य के प्रति सम्मान के कारण स्वीकारी जाती है और मनुष्य अपने भावनात्मक पक्ष से निरपेक्ष या स्वतंत्र रहते हुए जब शुभ संकल्प के अनुसार कर्म करता है तो वह नैतिक कर्म होता है।

काण्ट का मानना था कि यदि मनुष्य पूर्णतः बौद्धिक प्राणी होता तो उसके शुभ संकल्प के मार्ग में इच्छाएँ, भावनाएँ एवं प्रवृत्तियाँ कभी बाधा नहीं डालती। ऐसी स्थिति में बिना प्रयास के वह शुभ संकल्प करता परन्तु मनुष्य पूर्ण बौद्धिक नहीं है इसलिए कर्तव्य की चेतना द्वारा बाध्य होकर ही वह शुभ संकल्प के अनुसार कर्म करता है।

पूर्णरूपेण शुभ संकल्प सिर्फ ईश्वर का हो सकता है क्योंकि काण्ट के अनुसार वह पूर्ण बौद्धिक है। शुभ संकल्प की अभिव्यक्ति बिना किसी प्रयास के स्वतः होती है इसलिए ईश्वर का संकल्प 'पवित्र संकल्प' कहलाता है।

काण्ट का निरपेक्ष आदेश का सिद्धान्त कर्तव्यपालन की चेतना पर आधारित है जिसमें कर्तव्य उस कर्म को करने की अनिवार्यता है जो कर्म नैतिक नियम या सिद्धान्त के प्रति सम्मान की भावना से प्रेरित होकर किया जाता है। यदि प्रश्न किया जाय कि कर्त्तव्य का पालन क्यों किया जाए ?तो उत्तर है 'कर्त्तव्य के लिए'।

'कर्त्तव्य के लिए कर्त्तव्य' एक आकारिक सिद्धान्त है जिसमें किसी कर्म को सभी विवेकशील व्यक्तियों के लिए समान परिस्थिति में समान रूप से लागू होने की अनिवार्यता के साथ स्वीकारा जाता है। किसी परिस्थिति विशेष में यदि कोई कर्म हमारा कर्त्तव्य है तो इसका अर्थ है कि सभी विवेकशील प्राणी भी इसी प्रकार से इसे स्वीकारने की स्वतन्त्र इच्छा रखते हैं। इस सिद्धान्त में किसी परिणाम, परिस्थिति, उद्देश्य या रूचि के दृष्टिकोण से नियम नहीं स्वीकारा जाता है उसका नैतिक मूल्य सिर्फ 'कर्त्तव्य के लिए कर्त्तव्य' के रूप में स्वीकार करने से है। इसे समझने के लिए हम मानवीय कर्मों की तीन परिस्थितियों पर विचार कर सकते हैं :–

1) किसी कर्म को हम तात्कालिक संवेग, इच्छा से प्रेरित होकर करते हैं।
(2) किसी कर्म को अपने हित के लिए सोच समझकर करते हैं।
(3) किसी कर्म को केवल कर्त्तव्य पालन की चेतना से प्रेरित होकर करते हैं।

उपर्युक्त तीनों परिस्थितियों में काण्ट सिर्फ तीसरी स्थिति में किये जाने वाले कर्मों को नैतिक मानता है। शेष दोनों के नैतिक मूल्य को वह स्वीकार नहीं करता। वह मनुष्य के स्वार्थपरक संवेगों पर आधारित कर्मों को ही नैतिक दृष्टि से अस्वीकृत नहीं करता अपितु दया, प्रेम, सहानुभूति जैसे रचनात्मक संवेगों पर आधारित कर्मों को भी नैतिक नहीं स्वीकारता। अपने नैतिक सिद्धान्त में वह मनुष्य के सभी प्रकार के संवेगों व भावनाओं की पूर्ण उपेक्षा करता है इसलिए उसका सिद्धान्त कठोर नैतिक सिद्धान्त कहलाता है।

काण्ट नैतिक नियम की सर्वोच्चता को स्वीकारते हुए मानते हैं कि यह मनुष्य द्वारा कर्त्तव्य पालन की चेतना से प्रेरित होकर आदेश के रूप में स्वीकार किया जाता है इसलिए उन्होंने इसे निरपेक्ष आदेश की संज्ञा दी।

बहुविकल्पात्मक प्रश्न

(1) 'मनुष्य सभी वस्तुओं का मापदण्ड है।' किसका कथन है।
(अ) सुकरात (ब) प्लेटो (स) प्रोटेगोरस (द) अरस्तु

(2) प्लेटो के गुरू थे–
(अ) प्रोटेगोरस (ब) गोर्जियस (स) सोफिस्ट (द) सुकरात

(3) सुकरात ने किस प्रकार के ज्ञान को स्वीकारा–
(अ) व्यक्तिगत (ब) इन्द्रिय प्रत्यक्ष (स) सम्प्रत्ययात्मक (द) कल्पना आधारित

(4) प्लेटो, मनुष्य स्वभाव में स्वीकारते है–
(अ) बुद्धि, इच्छा, संवेग (ब) सिर्फ बुद्धि
(स) इच्छा व संवेग (द) सिर्फ संवेग

(5) अरस्तु के अनुसार ऐच्छिक कर्म का निर्धारण होता है–
(अ) इच्छा से (ब) कल्पना से (स) बुद्धि से (द) स्वभावत :

(6) संयम सद्‌गुण का अर्थ है–
(अ) भावनात्मक पक्ष पर नियन्त्रण (ब) बुद्धि पर नियन्त्रण
(स) उक्त दोनों पर नियन्त्रण (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

(7) काण्ट नैतिक निर्णयों का सम्बन्ध मानते हैं–
(अ) भावना से (ब) परिणाम से (स) सिर्फ बुद्धि से (द) भावना व बुद्धि दोनों से

(8) सद्‌गुणों के मध्यम मार्ग का सिद्धान्त दिया–
(अ) अरस्तु (ब) काण्ट (स) प्लेटो (द) सुकरात

(9) 'सद्‌गुण ज्ञान है।' इसे कौन स्वीकार करता है–
(अ) प्लेटो (ब) सुकरात (स) अरस्तु (द) कोई नहीं

(10) प्लेटो के मुख्य सद्‌गुणों की धारणा है–
(अ) व्यक्ति के संदर्भ में (ब) राज्य के संदर्भ में
(स) उक्त दोनों के संदर्भ में (द) प्रत्ययों के संदर्भ में

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

(1) 'सद्‌गुण ज्ञान है।' किसने कहा?
(2) मुख्य सद्‌गुणों के नाम लिखिये।
(3) सुकराती पद्धति क्या है?
(4) कर्तव्य क्या है?
(5) सद्‌गुण क्या है?
(6) ऐच्छिक कर्म क्या है?
(7) अरस्तु की नीतिशास्त्र पर पुस्तक का नाम क्या है?
(8) यूडेमोनिज्म क्या है?
(9) विवेक सद्‌गुण क्या है?

(10) मनुष्य स्वभाव के दो पक्ष कौनसे है?
(11) परिणाम निरपेक्ष नैतिक सिद्धान्त किसे कहते है?
(12) काण्ट का सिद्धान्त कठोर बुद्धिवादी सिद्धान्त क्यों कहलाता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

(1) सुकरात की दार्शनिक समस्या क्या थी?
(2) सद्‌गुणों की एकता का सिद्धान्त क्या है?
(3) विवेक सद्‌गुण को व्यक्ति व राज्य के संदर्भ में स्पष्ट कीजिये।
(4) न्याय सद्‌गुण का अन्य मुख्य सद्‌गुणों से क्या संबंध है?
(5) अरस्तु के अनुसार साहस सद्‌गुण क्या है?
(6) प्लेटो व अरस्तु के अनुसार आदर्श जीवन क्या है?
(7) संयम सद्‌गुण को समझाइये।
(8) शुभ संकल्प को समझाइये।
(9) शुभ संकल्प व पवित्र संकल्प में अन्तर समझाइये।
(10) निरपेक्ष आदेश क्या है?

निबन्धात्मक प्रश्न

(1) सुकरात के 'सद्‌गुण ज्ञान है।' सिद्धान्त को समझाइये।
(2) प्लेटो के अनुसार मुख्य सद्‌गुणों का वर्णन कीजिये।
(3) अरस्तु के अनुसार 'सद्‌गुण मध्य मार्ग है।' को समझाइये।
(4) काण्ट के 'कर्तव्य के लिए कर्तव्य' सिद्धान्त की व्याख्या कीजिये।